शोधार्थी – **मो. अज़हर खान**
शोध-निर्देशक – प्रो. अब्दुल बिस्मिल्लाह
विभाग – हिन्दी
विषय – तुलसी विषयक आलोचनाओं का मूल्यांकन

शोध-सार

हिन्दी आलोचना और साहित्य के इतिहास में जो केन्द्रीयता तुलसीदास और उनके साहित्य को मिली, वह अन्यत्र दुर्लभ है। तुलसी हिन्दी के ही नहीं बल्कि भारत के भी सर्वश्रेष्ठ कवि हैं। इतना ही नहीं, वह विश्व के गिने-चुने महाकवियों में हैं। उनकी लोकप्रियता सर्वविदित है। तुलसी ने 'रामचरितमानस' की रचना कर सबसे पहले देश के जन साधारण के दिल को जीता, जिससे यह बात स्पष्ट तौर पर कही जा सकती है कि उनकी रचनाओं में लोक साहित्य के उद्‌भुत गुण मौजूद हैं। इसीलिए हिन्दी जनता के मन में तुलसी की छवि आज भी वैसी ही बनी हुई है। इसके अलावा काफी पहले से ही तुलसी को विद्वानों/आलोचकों का भी सम्मान मिला और आज भी मिल रहा है। इस तरह तुलसीदास की लोकप्रियता में कोई कमी नहीं आई बल्कि वह उसी रूप में कायम है। तुलसी की इसी लोकप्रियता को देखते हुए फ्रंचेस्का ओरसीनी ने सही लिखा है कि कोई कवि या लेखक समूचे शिक्षित और अशिक्षित हिन्दी समुदाय को इस कदर अपना बनाने की नहीं सोच सका, जितना तुलसी ने बनाया। यह सच है कि तुलसी और उनका साहित्य सामान्य जनता के साथ विद्वानों में भी सम्मानित है। फिर भी तुलसी-साहित्य को अनेक तरीके से हिन्दी आलोचकों ने 'रीड' (पाठ) किया है।

ऐसा नहीं है कि तुलसीदास और उनकी रचनाओं के विरोध में आलोचनात्मक मत प्रकट न हुए हों। यदि आचार्य रामचंद्र शुक्ल, श्यामसुंदर दास, रामनेरश त्रिपाठी, रामविलास शर्मा जैसे लोग तुलसी के प्रबल पक्षधर रहे हैं, तो वहीं राहुल सांकृत्यायन, रांगेय राघव, प्रकाशचंद्र गुप्त, यशपाल आदि तुलसी के कटु आलोचक रहे। एक जमाने में तुलसी के विरुद्ध 'हिन्दू समाज के पथभ्रष्टक तुलसीदास' जैसी किताब भी लिखी गई, लेकिन इन सबसे तुलसी की प्रासंगिकता और लोकप्रियता में कोई कमी नहीं आई। तुलसीदास हिन्दी प्रदेश की जनता के अस्मिताबोध से जुड़े हुए कवि हैं। यद्यपि ये भी सही है कि यह अस्मिताबोध सवर्ण पुरुषवादी मानस के सांस्कृतिक प्रभुत्व को दर्शाता है।

तुलसी विषयक आलोचनाओं का मूल्यांकन करते हुए सिर्फ तुलसी और उनके काव्य की ऐतिहासिक प्रासंगिकता को ही जानना जरूरी नहीं है, हालांकि वह भी एक महत्वपूर्ण पहलू है। इस बात को भी समझने की जरूरत है कि पंद्रहवीं-सोलहवीं शताब्दी का कवि यदि विभिन्न आलोचनात्मक पाठों से गुजरता हुआ हमारे पास पहुंचता है तो उन पाठों के स्थायित्व के कारक कौन से रहे हैं? उन्होंने किस प्रकार तुलसी के साहित्य से अपने आप को सम्बद्ध किया है? किस ढंग से अन्य वैकल्पिक पाठों की सम्भावना का दमन किया है और ऐसे कौन-कौन से सामाजिक-सांस्कृतिक दबाव थे जिसके द्वारा तुलसी विषयक विशेषीकृत आलोचनात्मक विमर्श का निर्माण हुआ? क्या आलोचनात्मक विमर्श के माध्यम से तुलसी को 'हिन्दू कैनन' से विस्थापित किया सका है? यदि हाँ तो उसमें कितनी सफलता मिली है? क्या तुलसी विषयक आलोचनात्मक विमर्श को और अधिक विस्तृत किया जा सकता है? यदि प्रत्येक जमाने के चिंतन में उस जमाने के सामाजिक-सांस्कृतिक आग्रहों की छाप होती है तो तुलसी विषयक आलोचना में यह किस ढंग से मुखर हुई है? इन सभी सवालों से रूबरू होते हुए मैंने तुलसी विषयक आलोचना के वस्तुनिष्ठ मूल्यांकन की कोशिश की है।

तमाम चिंतकों और समाज सुधारकों ने तुलसी के 'मानस' को वक्त की नजाकत के मुताबिक सही काम के लिए (जनहित में) इस्तेमाल किया और उसे अलग तरह से देखा। तुलसीदास के काव्यत्व और प्रतिभा को देखते हुए हिन्दी के साहित्यकारों ने उन पर कविताएं भी लिखीं। जहां तक तुलसी विषयक आलोचनाओं की बात है तो ज्यादातर आलोचनाएं उनकी धार्मिक और लोकप्रिय छवि को देखते हुए लिखी गईं हैं। तुलसी का विशुद्ध साहित्यिक मूल्यांकन कम ही हुआ है। इसलिए तुलसी की रचनाओं का बतौर साहित्य के रूप में वस्तुपरक दृष्टि से मूल्यांकन करने पर ही उनकी अच्छाइयों और कमियों को सामने लाया जा सकता है। इस दृष्टि से हिन्दी में तुलसी-साहित्य की आलोचनाएं हुई भी हैं, जो उसके वास्तविक स्वरूप पेश भी करती हैं। फिर भी विमर्शों और वादों के दायरे में आज तुलसी और उनकी रचनाओं का जिस तरह विश्लेषण हो रहा है, वह बहुत हद तक अतिरंजित भी है।